द्वितीय अध्याय

'आँचलिक उपन्यास : स्वरुप और विकास'

द्वितीय अध्याय

आँचलिक उपन्यास : स्वरूप और विकास

2.1 अँचल और आँचलिकता : स्वरूप :-

आँचलिक शब्द 'अँचल' से बना है। अत: अँचलिक या आँचलिकता की व्याख्या के लिए 'अँचल' शब्द का अर्थ देखना अपेक्षित है। 'अँचल' शब्द मूलत: संस्कृत शब्द 'अञ्चल' है। जिसकी व्युत्पत्ति 'अंच' धातु में 'अलच्' प्रत्यय के योग से हुई है। हिंदी कोशों में 'अंचल' का अर्थोल्लेख इस प्रकार किया गया है। -

1. महेन्द्र भटनागर के शब्दों में, ''आँचलिक रचनाओं में कोई विशिष्ट अंचल व क्षेत्र या उसका कोई भाग व गांव ही प्रति-पाद्य या विवेच्य होता है।''[1]
2. ''देश का एक भाग या प्रान्त जो सीमा के समीप हो।''[2]
3. ''किसी क्षेत्र का कोई पार्श्व या आँचल।''[3]
4. ''अंचल का अर्थ है - क्षेत्र या जनपद। अंचल किसी क्षेत्र के लोग-जीवन का चित्रण करता है।''[4]

'अंचल' शब्द के अर्थ से अभिप्रेत होता है कि 'अंचल' याने साडी का छोर, देश का भाग, सीमावर्ती प्रदेश, कोई विशेष क्षेत्र या जनपद। 'अंचल' समग्र रूप से किसी एक विशेष भाग का द्योतक है, चाहे वह भाग देश का कोई क्षेत्र, भाग या प्रान्त, ग्राम, सीमावर्ती भाग, आँधा गांव, मुहल्ला, किनारा या नगर का एक क्षेत्र भी हो सकता है। ''इस 'अंचल' शब्द में तद्धित 'ढूज' प्रत्यय के योग से आँचलिक शब्द बनता है, जिसका अर्थ हुआ किसी देश के अंचल, क्षेत्र, पार्श्वभाग या प्रांत या नगर या ग्राम विशेष सम्बन्धित। अत: वे उपन्यास, जिनका प्रतिपाद्य किसी देश का कोई अंचल विशेष - चाहे वह ग्राम विशेष हो या प्रान्त विशेष होता है, आँचलिक उपन्यास।''[5]

---

1. सं. डॉ. वीरेन्द्र वर्मा, 'हिन्दी साहित्य कोश, भाग -1', ज्ञान मण्डल प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय सं. सवत् 2020, पृ. 95.
2. सम्पादक - श्याम सुन्दर, 'हिंदी शब्द सागर', काशी नागरी प्रचारिणी सभा, प्र. सं. 1996, पृ. 10.
3. सम्पादक - रामचन्द्र वर्मा, 'मानक हिन्दी कोश' हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्र. सं. सवत् 2019, पृ. 9.
4. तेजसिंह, 'नागार्जुन का कथा साहित्य', पराग प्रकाशन, दिल्तली, प्र. सं. 1993, पृ. 120.
5. शम्भुसिंह, 'रांगेय राघव और आँचलिक उपन्यास', सुशील प्रकाशन, अजमेर, प्र. सं. 1979, पृ. 11.

'अंचल' शब्द के अर्थ से आँचलिक उपन्यास का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। क्योंकि प्रेमचंद से लेकर वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में हमें अंचल विशेष का चित्रण मिलता है परंतु प्रेमचंद के उपन्यास किसी एक गाँव की कहानी नहीं तो वह हिंदुस्थान की कहानी बनकर 'हिंदुस्थानी' अंचलिकता को पेश करता है। जैसे 'गोदान' के 'होरी' की कथा पूरे भारत वर्ष की कथा है। वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में 'बुंदेल खंड' अंचल जरूर आया है लेकिन वह इतिहास को लेकर वहाँ के समग्र लोकजीवन पर वह दृष्टि नहीं डालता। आँचलिक उपन्यास के स्वरूप को जानने के लिए 'आँचलिकता' शब्द को जानना आवश्यक है जिससे आँचलिक उपन्यास की परिभाषा कर सकते है।

'आँचलिक' शब्द अर्थ की दृष्टि से अत्यन्त व्यापक शब्द है। रेणु के 'मैला आँचल' से हिंदी उपन्यास साहित्य में आँचलिक उपन्यास नाम का प्रादुर्भाव हुआ मिलता है। 'मैला आँचल' में बिहार के पूर्णिया जिला के मेरीगंज गाँव का चित्रण है। 'मैला आँचल' देश-काल-वातावरण इस तत्व को लेकर सामने आते हुए मेरीगंज के स्थानिय जीवन का चित्रण करता है जो कथावस्तु को पुष्ट बनाने के लिए आवश्यक तत्व है। ''स्थानीय रंग से सामान्य तथा 'लोकल कलर' से तात्पर्य समझा जाता है। स्थानिय रंग का महत्व दो कारणों से बढ जाता है। एक तो यह कि इसके होने से उपन्यास में प्रभावात्मकता आ जाती है, तथा दूसरे यह कि उसकी कृत्रिमता नष्ट हो जाती है और स्वाभाविकता बढ़ जाती है। ये ही कुछ कारण है जिनके लिए उपन्यासों में स्थानिय रंग देना आवश्यक समझा जाता है।''[1] देश-काल-वातावरण इस तत्व के अंतर्गत स्थानिय रंग को लेकर चलने की बात महत्वपूर्ण है तो आँचलिकता क्या है? यह सवाल खडा हो जाता है। स्थानिक रंग के अलावा भी कुछ विशेष गुण आँचलिकता के होते है जिसे हम आँचलिक उपन्यास कहे। इसलिए प्रथमत: आँचलिकता को जानना आवश्यक है। जिससे आँचलिकता की विशेषताएँ सामने आना महत्वपूर्ण है क्योंकि आँचलिक उपन्यासों में काल्पनिक एवं स्वप्निल संसार का सम्मोहन नहीं पाया जाता बल्कि उसमें स्थानिय रंग का वास्तविक एवं निकटता से दर्शन करा दिया जाता है जो कल्पना संसार से कम सौंदर्यानुभूती करा दे बल्कि उसमें भी वह शक्ति रहती है कि लेखक अति साधारण हरे-भरे खेत, धूलभरी गलियाँ, लडते-झगडते, हसते-खेलते लोग, अपना एक संगीत, जीवनराग निर्माण कर देते है

---

1. डॉ. प्रतापनारायण, 'हिंदी उपन्यास उद्‌भव और विकास, कलाकार प्रकाशन, लखनऊ, पृ. 39.

जो किसी परी-कथाओं से भी रोचक बन जाता है। एक प्रतिभाशाली उपन्यासकार की यही विशेषता हो सकती है कि वह अपने प्रदेश की विशेषताओं को लेकर वहाँ का मानवी जीवन प्रस्तुत करे जो आँचलिकता को लेकर हो।

आँचलिकता को स्पष्ट करना हो तो उसमें निम्नलिखित विशेषताएँ आवश्यक है-

"1. आँचलिक उपन्यास हमें अपने महान देश की चित्रविचित्र प्रकृतिगत समृद्धि, सुषमा एवं गरिमा से परिचित कराता है और हमारे हृदयों में उसके प्रति आत्मीय, स्निग्धता का उद्रेक कराता है।

2. आँचलिक उपन्यास हमारी इसी जानी-पहचानी धरती के, किसी जाने-पहचाने स्थल विशेष के वास्तविक वातावरण एवं जनसाधारण के जीवन के प्रति, आस्था उत्पन्न कराता है और इस प्रकार वह कपोल-कल्पित, स्वप्निल एवं अवास्तविक उपन्यास साहित्य की सृष्टि की निरर्थक प्रवृत्ति पर रोक भी लगाता है।

3. आँचलिक उपन्यास अनिवार्यत: एक लोकसत्तात्मक साहित्यिक विधा है। वह इस आस्था की अभिव्यक्ति है कि साधारणतम नर-नारी भी इतने रोचक एवं वर्णनीय है जितने कि राजा-रानी। आँचलिक उपन्यासों के प्रधान पात्र प्राय: सभी अपनी हाथ-मेहनत से आजीविका चलाने वाले और मानव जाति की प्रगति में वे सक्रिय भाग लेने वाले हैं।

4. आँचलिक उपन्यास के पात्र, वास्तविकता का बल लिये हुए आगे बढ़ते है क्योंकि वे अपनी वंश परम्परा एवं स्थानिय वातावरण की ही उपज है। इस प्रकार के उपन्यासों में उनका चरित्र-चित्रण, उनके घरेलू एवं पैतृक वातावरण में ही विकसित किया जाता है और हम उन्हें अपने कुटुम्बियों एवं जात-बिरादरी के बीच सहज व्यवहार करता पाते हैं। उनमें कृत्रिम व्यवहार करने वाले अस्वाभाविक एवं अजनबी पात्र नहीं पाए जाते।

5. आँचलिक उपन्यास जन-जीवन के प्रतिबिम्ब हैं। उनके द्वारा न केवल पात्र-पात्रों के निजी जीवन से हमें अन्तरण परिचय प्राप्त होता है वरन् उस समाज, ग्राम, प्रदेश, प्राकृतिक वातावरण, धार्मिक एवं लौकिक विश्वासों, बद्धमूल संस्कारो, वेशभूषा, लोकभाषा, लोकगीतों, स्थानितय दन्त-कथाओं, मेलो-ढेलों, उत्सव, त्यौहारों आदि का भी परिचय मिलता है, जिसकी सम्पूर्ण अभिव्यंजना, किसी भी अन्य शैली भी उपन्यास विधा के द्वारा सम्भव नहीं है।

6. आँचलिक उपन्यासों में स्थानीय बोलियों के प्रयोग की मात्रा कितनी और कैसी रहनी उचित है? यह विषय भी विवादस्पद है। यदि उपन्यासकार उपन्यास-लेखन में ठेठ गाँव की बोली का इस प्रकार समावेश कराना चाहे, कि साधारण बोलचाल की, कथा-रस से भी वंचित रहना पडेगा तथा उसे हर शब्द पर अटकना पडेगा। स्थानीय बोली के अबाध प्रयोग के कारण, पात्र-पात्राओं की सहज स्वाभाविकता भी जाती रहेगी।''[1]

उपर्युक्त विशेषताओं को देखने के बाद प्रेमचंद जी ने की हुई उपन्यास की परिभाषा - 'मानव जीवन का चित्रमात्र ही उपन्यास है' यह ठिक लगती है परंतु, जिस उपन्यास में मानव जीवन को बनाने-बिगडने में जो स्थानिय देश-काल-वातावरण महत्वपूर्ण होता है उसे ही आँचलिकता में समग्रता के साथ होना आवश्यक हो जाता है। वह सिर्फ मानव जीवन का चित्रण न होकर अंचल का मूर्तिमान प्रतिबिंब हो। इंदिरा जोशी के मतानुसार - ''उस प्रदेश-विशेष में पाई जाने वाली मिट्टी के विविध रंगों, स्थानीय पशु-पंक्षियों के विवरणों, खेती-बाडी के उपकरणो तथा अन्य स्थानीय व्यवस्थाओं से सम्बन्धित, विशिष्ट संज्ञात्मक शब्दों के प्रयोग से वह प्रतीयमानता के साथ ही साथ, अपने पाठक का मनोरंजन भी कर सकता है और इसके अतिरिक्त पाठक का ज्ञान-वर्धन भी कर सकता है।''[2]

महेन्द्र भटनागर के शब्दों में - ''आँचलिक रचनाओं में कोई विशिष्ट अंचल व क्षेत्र या उसका कोई एक भाग व गांव ही प्रतिपाद्य या विवेच्य होता है।''[3]

उपन्यासों में मानव जीवन की सच्चाई और गहराई तथा स्वाभाविकता के साथ संश्लिष्ट और समग्र चित्रण होने से उसे हम आँचलिक उपन्यास नहीं कह सकते बल्कि, आँचलिक उपन्यासों में स्थानीय रंगत के साथ-साथ वहाँ के प्रकृति विशेष की तरफ विशेष ध्यान देना आवश्यक हो जाता है जो मानव जीवन को बनाने-बिगडने में कार्य करता है। वहाँ के रीति-रिवाजों, परम्पराओं, आचार-विचारों, बोली, धार्मिक मान्यताओं, अंधविश्वासों, रूढियों, संस्कृति, पर्वों, उत्सवों, निश्वासों, संघर्षों, जीवन पद्धति एवं जीवन-समस्याओं

---

1. डॉ. इन्दिरा जोशी, 'हिंदी आंचलिक उपन्यास : उद्भव और विकास', देवनागर प्रकाशन, जयपूर, प्र. सं.1985, पृ. 18-19.
2. वही, पृ. 19.
3. डॉ. वीरेन्द्र शर्मा, 'हिन्दी साहित्य कोश', ज्ञान मंडल प्रकाशन, वाराणसी, प्र. सं. संवत् 2020, पृ.95.

आदि का समग्र चित्रण ही आँचलिकता होती है। इन्हें बातों पर विशेष ध्यान देकर मानव जीवन का अंकन करना आँचलिक उपन्यास का उद्देश्य होता है। सिर्फ मानव जीवन की समस्याओं को लेकर लिखे गये उपन्यासों को हम सामाजिक उपन्यास मात्र कहते है लेकिन लोकल कलर को उजागर करना ही आँचलिकता है। आँचलिकता पाठक पर उस आँचलिकता की आभा छोड देती है जो पाठक मन से उस आँचल में जाकर वहाँ के पात्रों में से एक पात्र बनकर वहाँ के आँचलिकता को महसूस करने लगता है वह उपन्यासकार के लेखन कौशल्य को मन, बुद्धि से स्विकार कर लेता है और अंचल में भ्रमण करके आ जाता है। इस तरह बडी सच्चाई के साथ किसी विशेष क्षेत्रीय लोकजीवन को यथार्थता के साथ अभिव्यक्त करना ही आँचलिकता है।

इंदिरा जोशी 'आंचलिक आभा' के बारे में या आँचलिकता शब्द का अर्थ और सही सीमा का ज्ञान अपने शब्दों में इस प्रकार करा देती है - "जैसा कि इस शब्द से स्पष्ट है यह भाव - संज्ञा, किसी क्षेत्र या अंचल से सम्बद्ध है। क्षेत्र या अंचल उस भौगोलिक खंड को कहते है, जो सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से सुगठित और विशिष्ट एक ऐसी इकाई हो, जिसके निवासियों के रहन-सहन, प्रथाएँ, उत्सव आदि, आदर्श और आस्थाएँ मौलिक मान्यताएँ तथा मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ परस्पर समाज और दूसरे क्षेत्र के निवासियों से इतनी भिन्तन हो कि इनके आधार पर, यह क्षेत्र या अंचल-विशेष, इसी प्रकार के दूसरे क्षेत्रों से एकदम अलग प्रतीत हो। इस प्रकार के अंचल या क्षेत्र के जीवन को अभिव्यक्त करनेवाली रचना को हम 'आँचलिक' कह सकते है।"[1]

अंचल या क्षेत्र के जीवन को अभिव्यक्त करनेवाली रचना को हम 'आंचलिक' कहे तो आंचलिकता को सामने लाने वाले चित्रण को 'आंचलिक उपन्यास' के अंतर्गत लिया जाये तो आंचलिक आभा यही आंचलिक उपन्यास की अनिवार्य विशेषता हो जाती है। 'आंचलिक आभा' के बारे में इंदिरा जोशी कहती है - " 'आभा' पद और भी अधिक सुक्ष्मतर अनुभूति का व्यंजक है। उसमें सूक्ष्म आभास निहित है। जो केवल स्थूल प्रकृतिद्वारा ही, प्रति क्रियान्वित नहीं होता, वरन् जो उसके आन्तरिक रहस्य से भी हमे मन ही मन प्रभावित करता रहता है। यह आभास कभी इतिवृत्त की कथाओं से संयुक्त मिलता है - कभी किवदंतियाँ

---

1. डॉ. इन्दिरा जोशी, 'हिंदी आँचलिक उपन्यास : उद्भव और विकास', देवनागर प्रकाशन, नागपूर, प्र. सं. 1985, पृ. 26.

अथवा लोककथाओं से जो किसी समग्र अथवा उसके बीच उपस्थित किसी स्थल-विशेष के साथ न जाने कब से जुड गई है? कभी वह पहाडों, नदियों, झीलों, वनों एवं वन खण्डियों से जुडी रहती है और कभी वह खण्डहरों, भग्नावशेषों, स्मारकों, समाधियों के रोमानी प्रभाव के रूप में प्रतिक्रियान्वित होती है।''[1]

'अंचल' और 'आंचलिक आभा' इन दो शब्दों को देखने के बाद कह सकते है कि 'अंचल' भौगोलिक इकाई का नाम है। अर्थात् एक ऐसा भूखंड जिसकी सीमाओं, प्राकृतिक परिस्थितियों से परिसीमीत होती है। इस प्राकृतिक परिस्थितियों से परिसीमीत अंचल अपनी प्राकृतिक शोभा, विशिष्टता एवं व्यक्तिमत्ता, मानव जीवन तक परिसीमीत हो जाता है। परिणामस्वरूप इस भौगोलिक सीमा से परिसीमीत मानव का जीवन अपने भौगोलिक कारणों द्वारा प्रभावित रहता है, उसी प्रभावोत्पादक आंचल विशेष को हम आंचलिक आभा से व्याप्त मानवीय जीवन को प्रस्तुत करनेवाले उपन्यास को आंचलिक उपन्यास के अंतर्गत रख सकते है। क्योंकि उपन्यासकार अंचल की जीवनानुभूति में अपना जीवन गुजारनेवाला होता है। वह अंचल में पला-बडा होता है। अपनी जीवनानुभूति और लोक जीवनानुभूति में अन्तर नहीं मानता, वह सच्चाई के साथ अंचल का चित्रण करता है। वहाँ कृत्रिमता को स्थान नहीं होता है चाहे वह अंचल या विशिष्ट भूप्रदेश किसी ग्रामांचल का चित्रण हो या नगरांचल का चित्रण ही जिसमें अंचल में निवास करने वाले मानव का चित्रण सहजता से, स्वाभाविकता से विशेष और रोचकता से आ जाता है जिसमें अंचल विशेष के प्राकृतिक सौंदर्य और उससे लिपटी हुई संस्कृति से सम्बन्धित वहाँ के रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, रूढियों, धार्मिक मान्यताओं, लोकगीत, नृत्य, खेल-तमाशे, उत्सव एवं पर्व, आधुनिकता के प्रभाव से आये कतिपय परिवर्तन आदि का सूक्ष्म, समग्र एवं हृदय ग्राही अंकन होता है जो आँचलिक सीमा की अपनी सीमाएँ निर्धारित करता है। आँचलिक उपन्यास की शक्ति एवं सीमाएँ निम्न प्रकार से है -

2.2 आँचलिक उपन्यास की सीमाएँ :-

आँचलिक उपन्यासकार लोक-ज़ीवन से ही अपनी कथा को चुनता है, परंतु उसकी विशेषता यही रहती है कि उसने चुना हुआ मानव समाज सामान्य जन-समान, विशेष भूखण्ड

---

1. डॉ. इन्दिरा जोशी, 'हिंदी आँचलिक उपन्यास : उद्‌भव और विकास', देवनागर प्रकाशन, नागपूर, प्र. सं. 1985, पृ. 24.

या जनपद की परिधि से आबद्ध होता है। आँचलिक उपन्यासों में चित्रित अंचल विशेषता की भी अपनी सीमाएँ निर्धारित हो जाती है। बल्कि, आँचलिक उपन्यासों में अंचल विशेष या क्षेत्र विशेष के जन-जीवन का सर्वांगीण विवरण लिया जाता है, परिचित, अपरिचित भूमी (भूखण्ड) का उद्घाटन किया जाता है। लोक संस्कृति को उजागर किया जाता है। जिसमें लोकधर्मी भाषा, बोली, उपबोलियों की विविधता निहित होती है। विशिष्ट भूखण्ड के लोक जीवन का समग्र जीवन के उतार-चढाव को एक चौकट में रखने का काम वहाँ की आँचलिक विशेषता ही करती है जिसे हम आँचलिक सीमा कहे जिससे सारा जीवन जखडा रहता है, उसी आंचल विशेष में वह समाज बंध कर रहता है। आँचलिक उपन्यास की सीमा निहित करते हुए डॉ. रामदरश मिश्र जी कहते है - "आँचलिक उपन्यासों में अनुभवहीन सामान्य या विराट के पीछे न दौडकर अनुभव की सीमा में आनेवाले अंचल विरोध को उपन्यास का क्षेत्र बताया है।"[1]

आँचलिक उपन्यास की सीमा निर्धारित करते समय भौगोलिक सीमा की तरफ ध्यान देना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि भौतिक सीमाएँ अपने में कुछ विशेषताएँ लिये होती है जिसके परिणाम स्वरूप ही वहाँ के जन-जीवन की विशेषताएँ स्पष्ट होती है। डॉ. बदरी प्रसाद के मतानुसार - "यह (प्रादेशिक उपन्यास) वास्तव में ग्राम्य या वन्य अंचल का उपन्यास होता है - साहित्य और भूगोल का सम्बन्ध प्रादेशिक उपन्यास में देखने को मिलता है, वास्तव में प्रादेशिक उपन्यास धरती का उपन्यास है, उसके पास धरती के लाल है।"[2]

निष्कर्ष :-

1. आँचलिक उपन्यास की अपनी कुछ विशेषताएँ होती है; जिसमें किसी ग्राम, नगर, प्रान्त या क्षेत्र विशेष आ जाता है। वह सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक मानदण्ड की दृष्टि से एक इकाई होती है; जिसे पाठक के सामने प्रस्तुत करना लेखक का उद्देश्य होता है।

2. अंचल विशेष का प्रामाणिकता के साथ अंकन करना, कृत्रिमता को स्थान न देना सच्चे आँचलिक उपन्यासकार का धर्म होता है।

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र, 'हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र. सं. 1968, पृ. 187.
2. डॉ. बदरी प्रसाद, 'हिंदी उपन्यास : पृष्ठभूमि और परम्परा', ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 1966, पृ. 368-369.

3. आँचलिक उपन्यासकार लोकजीवन में जिया होता है, तथा अपनी जीवनानुभूति और लोक-जीवनानुभूति में अंतर नहीं मानता तभी वह अपनी रचना को सफल बना सकता है। आँचलिक कृती को न्याय दे सकता है।

4. आँचलिक उपन्यासकारी का सम्पूर्ण ध्यान अंचल पर होता है। जिसके कारण चरित्र-चित्रण और कथा-संगठन में बिखराव आ जाता है। परंतु, अंचल का धागा उन्हें एकता में पिरोता है, वही उपन्यासकार की विशेषता होती है।

5. आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार अंचल विशेष के प्राकृतिक सौंदर्य, संस्कृति से सम्बन्धित वहाँ के रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, रुढ़ियाँ, धार्मिक मान्यताओं, लोकगीत, नृत्य, खेल-तमाशे, उत्सव एवं पर्व, आधुनिकता के प्रभाव से आये कतिपय परिवर्तन आदि का सूक्ष्म, समग्र एवं हृदयग्राही अंकन करता है। यही आँचलिक विशेष बातें उसे सामाजिक उपन्यासों से सहज अलग करती है।

6. आँचलिकता को स्पष्ट करने के लिए आँचलिक उपन्यासकार क्षेत्रविशेष की भाषा का अवलंब भी ग्रहण करता है। वह पात्रों के माध्यम से क्षेत्र विशेष की भाषा तथा उससे संबंधित मुहावरों, लोकोक्तियों का प्रयोग सहजता से करता है। परिणाम स्वरूप, उपन्यास में सहजता, स्वाभाविकता और रोचकता आ जाती है। पाठक 'अंचल विशेष' को जानने के लिये कृती से बंधकर रहता है। परंतु भाषा में अति जटिलता न हो जिससे अन्य क्षेत्र के पाठक के लिये कृती दुर्बोध न हो।

2.3 हिंदी के आंचलिक उपन्यासों का विकास :-

प्रकृति के बीच रहनेवाला मनुष्य उसके विविध रूप रंगों की तरह अपनी रूचि के अनुसार आकर्षित होकर अलग-अलग परिवेश में, क्षेत्र में जाकर बसा होगा या भूख मिटाने हेतू भ्रमण करनेवाला मनुष्य जहाँ साधनसामुग्री की अधिकता है वहाँ ठहरा होगा और देश-प्रदेशों का निर्माण हुआ होगा। कुछ भी हो मनुष्य जहाँ कही बसा वहाँ के प्रकृति, परिवेश का प्रतिबिंब उसके जीवन में नजर आने लगा। उपन्यास तो मानव जीवन को सम्रगता से प्रस्तुत करने का साधन है जो प्रकृति का चित्रण उपन्यासों में सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति के रूप में दृष्टिगोचर होता है। क्यों न किसी उपन्यास में यह प्रवृत्ति अंश रूप में दिखाई देती है; तो किन्हीं उपन्यासों में प्रकृति का चित्रण मानव जीवन का विशेष अंग के रूप में चित्रित किया

है। ''हिंदी उपन्यास साहित्य में जहाँ प्रकृति के विशिष्ट प्रदेश परिवेश को मानव जीवन से अटूट संबंध के साथ प्रस्तुत किया वह 'आँचलिक उपन्यास' के रूप में स्विकृत किया गया है।''

भारतीय हिंदी साहित्य में हिंदी उपन्यास का उद्भव, विकास और उत्कर्ष देखा जाए तो उपन्यास में प्रकृति चित्रण, प्रदेश, क्षेत्र, परिवेश का चित्रण प्रथमत: से ही दिखाई देता है। उसे हम निम्नानुसार विभाजित कर सकते है -

1. प्रेमचंद पूर्व आँचलिक उपन्यास (भारतेन्दु से 1893 से 1903 तक)
2. प्रेमचंदकालीन आँचलिक उपन्यास (1904 से 1936 तक)
3. प्रेमचंदोत्तर आँचलिक उपन्यास (1936 से 1951 तक)
4. आधुनिक हिंदी उपन्यास में आँचलिक उपन्यास (1951 से 2000 तक)

2.3.1 प्रेमचंदपूर्व आँचलिक उपन्यास (1893 से 1903) :-

भारतेन्दु युग में ही हिंदी उपन्यासों में आँचलिक परिवेश की अभिव्यंजना का बीज-वपन हुआ दिखाई देता है। जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी द्वारा रचित 'वसन्त मालती' (1819) हिंदी का वह प्रथम उपन्यास है जिसमें आँचलिकता का पुट मिलता है। ''इसका प्रतिपाद्य मुंगेर जिले का मलयपुर अंचल है। लेखक ने वहाँ के लोकगीतों, लोकभाषा और प्राकृतिक वातावरण के निरूपण द्वारा आँचलिक तत्वों को समाविष्मट करने का प्रयास किया है। लेकिन ये तत्व है अपरिपक्व रूप में ही।''[1] जिसके परिणामस्वरूप उसे आँचलिक उपन्यास के अंतर्गत नहीं रख सकते।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔंध' का 'अध खिला फूल' (1907) इसमें भी आँचलिकता के कुछ तत्व दिखाई देते है। इसके साथ-साथ रामचीज सिंह के 'वन-विहंगिनी' (1909), में भी लेखक ने आदिम-जातियों के जीवन को उजागर करते हुए प्राकृतिक वातावरण का चित्रण किया है।

कुछ आलोचक मन्नन द्विवेदी गजपुरी की कृति 'रामलाल' (1914 ई.) को प्रथम आँचलिक उपन्यास के रूप में स्विकार करते है। क्योंकि उसमें ग्रामांचल की समस्याओं, आस्थाओं, विश्वासों, सुख-दु:खों, अन्ध-विश्वासों के साथ-साथ लोकजीवन के त्यौहारों, मेलों आदि का चित्रण हुआ है। इसमें आये पात्र अंचल का प्रतिनिधित्व करते है; परंतु कथा

---

1. शम्भूसिंह, 'रांगेय राघव और आंचलिक उपन्यास', सुशील प्रकाशन, अजमेर, प्र. सं. 1989, पृ. 23.

का क्षेत्र किसी विशेष अंचल में सीमित नहीं रह पाया है। जिसके कारण इस उपन्यास को हम विशिष्ट अंचल का चित्रण करनेवाला आँचलिक उपन्यास नहीं कह सकते है।

इस तरह प्रेमचन्द पूर्व युग में आँचलिकता का बीजवपन तो हो गया था, परंतु उन उपन्यासों में आंचलिकता के तत्व अपरिपक्व रूप में देखे जा सकते है। इस संदर्भ में डॉ.आदर्श सक्सेना लिखते है - ''प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास आँचलिकता के तत्वों से रहित है; परंतु उनके वातावरण चित्रण में परवर्ती आँचलिक चित्रण का प्रारम्भिक रूप देखा जा सकता है।''[1] ''शिवपूजन सहाय की 'देहाती दुनियाँ' (1926), में भी आँचलिकता के अपरिपक्व तत्व देखे जा सकते है।''

प्रेमचंद पूर्व जिन उपन्यासों में आंशिक आँचलिकता दिखाई दी है; जिसमें स्थानीय रंग तथा आँचलिक संस्पर्श हुआ वह उपन्यास है - भुवनेश्वर मिश्र कृत (धराऊ घटना - 1893), 'बलवन्त भूमिहार' (1901), हरिऔंध कृत 'अधखिला फूल' (1907), रामचीज सिंह का 'वन-विहिंगनी' (1909), गोपाल गहमरी कृत 'भोजपूर की ढगी' (1912), मन्नन त्रिवेदी कृत 'रामलाल' (1914), शिवपूजन सहाय के 'देहाति दुनिया' (1926), पं. लज्जाराम शर्माकृत 'आदर्श दम्पति' (1904), बाबु ब्रजनन्दन सहाय की 'अद्‌भुत प्रायश्चित' (1906), 'राजेन्द्र मालती' (1906), 'राधाकान्त' (1912) में भी आँचलिकता की झाँकिया दिखाई देती है। इसमें 'रामलाल' और 'देहाती दुनिया' विशेष स्थान रखते है।''[2]

इंदिरा जोशी जी ने अपने शोध-ग्रंथ हिंदी आँचलिक उपन्यास उद्‌भव और विकास में तो हिंदी का आद्‌य उपन्यास 'रानी केतकी की कहानी' में भी आँचलिकता के तत्व ढूंढे है। उन्होंने लिखा है, ''इस उपन्यासिका में बोली जाने वाली विशुद्‌ध खड़ी बोली तथा अवध-विशेषतया लखनऊ एवं उसके आसपास बोली जानेवाली लोकभाषा का, ललित एवं साहित्यिक रूप है।''[3] 'रानी केतकी की कहानी' में अवध के जनजीवन के भी अनेकानेक प्रतिबिम्ब पाए जाते है। इसीलिए 'इंशा' की कृति अवध-प्रदेश में बड़ी लोकप्रिय हुई।''[4]

---

1. डॉ. आदर्श सक्सेना, 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि', सूर्य प्रकाशन मन्दिर, बीकानेर, प्र. सं. 1971, पृ. 73.
2. शम्भूसिंह, 'रांगेय राघव और आंचलिक उपन्यास', सुशील प्रकाशन, अजमेर, प्र. सं. 1989, पृ. 23.
3. डॉ. इन्दिरा जोशी, 'हिन्दी आंचलिक उपन्यास : उद्‌भव और विकास', देवनागर प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं. 1985, पृ. 59.
4. वही, पृ. 88.

पं. लल्लू लालजी की कृति 'प्रेमसागर' में भी ब्रजभाषा के विशिष्ट रंग के कारण आँचलिक आभातत्व प्रखर हो उठा है।

आद्य उपन्यासों में लिये 'सामाजिक विषय' हो या 'जासूसी-तिलस्मी' इंदिरा जोशी ने अपने विवेचनात्मक ग्रंथ 'हिंदी आँचलिक उपन्यासों का उद्भव और विकास में निम्नलिखित उपन्यासों ने आँचलिकता की आभा को पाया है जो यही स्पष्ट करता है कि हिंदी के आद्य उपन्यासों में आँचलिकता ने अपना विशिष्ट स्थान रखा है वह लोकजीवन को स्पष्ट करने हेतू।

	लेखक	कृति का नाम
1.	भारतेन्दु	भाग्यवती, कुछ आप बीती कुछ जग बीती,
2.	पं. गौरीदत्त	देवरानी जेठानी की कहानी
3.	बालकृष्ण भट्ट	नूतन ब्रह्मणचारी, सौ अजान एक सुजान
4.	राधाकृष्णदास	नि:सहाय हिन्दू
5.	श्रीनिवासदास	परीक्षा गुरू
6.	जगमोहनसिंह	श्यामा स्वप्न
7.	श्री देवकीनन्दन खत्री	चन्द्रकांता, भूतनाथ
8.	पं. देवीप्रसाद शर्मा	सुन्दर सरोजिनी
9.	श्री. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	ठेठ हिन्दी का ठाठ, अधखिला फूल
10.	गोपालराम गहमरी	जादूगरनी मनोरमा
11.	पं. भुवनेश्वर मिश्र	बलवन्त भूमिहार
12.	पं. लज्जाराम शर्मा	धूर्त रसिकलाल, स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी, हिन्दू गृहस्थ, आदर्श दम्पति, बिगडे का सुधार, कपटी मित्र, शराबी की खराबी, सुशीला विधवा।
13.	बाबू ब्रजनन सहाय	अद्भुत प्रायश्चित, राजेंद्र मालती, राधाकान्त।

इंदिरा जोशी ने उपर्युक्त आद्य उपन्यासों में स्थित आँचलिक आभा को स्पष्टता के साथ उद्धृत किया है। इस तरह प्रेमचंदजी पूर्व लिखे उपन्यासों में भी आँचलिकता को देखते हुए आँचलिक उपन्यासों के बिज-वपन का कालखंड (1893 से 1936) 'आद्य आँचलिक उपन्यास' इस नाम से समझ सकते है।

2.2 प्रेमचंदकालीन आँचलिक उपन्यास (1904 से 1936) :-

सन 1904 में 'प्रेमा' यह प्रथम उपन्यास के साथ प्रेमचंद जी का 'हिंदी जगत्' में आगमन हुआ। 'प्रेमा' से लेकर 'मंगलसूत्र' तक के बारह उपन्यासों में आँचलिकता के तत्व दिखते जरूर है, परंतु वह 'अंचल' किसी विशिष्ट भूमी का प्रतिनिधीत्व नहीं करता बल्कि, प्रेमचंदजी के उपन्यासों में चित्रित ग्रामजीवन संपूर्ण भारतवर्ष के ग्रामों का प्रतिनिधित्व करता है। डॉ. इंदिरा जोशी कहती है - "उनके उपन्यास वस्तुत: देशकाल की परिधि को लांघ चुके है और वे शाश्वत एवं सार्वजनिक हो गए है।"[1]

प्रेमचंद जी के समकालीन उपन्यासकारों के उपन्यासों में भी आंशिक आँचलिक तत्व दिखाई देते है, वह उपन्यास इस प्रकार है -

श्री. महेन्द्र चतुर्वेदी जी ने 'हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण' इस ग्रंथ में आँचलिकता और उसकी शक्ति तथा सीमाओं का विवेचन करते हुए निम्न उपन्यासों को आँचलिक उपन्यास स्विकार किया है - 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमाँ', 'नई पौध', 'बाबा बटेसर नाथ', 'वरुण के बेटे', 'दु:खमोचन', 'मैला आँचल', 'परती परिकथा', 'सागर, लहरे और मनुष्य', 'बया का घोंसला और साँपा' आदि।

डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त जी ने अपनी कृती 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' में निम्नलिखित उपन्यासों को आँचलिक उपन्यास के अंतर्गत रखा है -

	लेखक का नाम	कृती का नाम
1.	नागार्जुन	बलचनमाँ, नई पौध, बाबा बटेसरनाथ, वरुण के बेटे, दु:खमोचन, कुम्भीपाक, हीरक जयन्ती, उग्रतारा।
2.	रेणु	मैला आँचल, परती परिकथा।
3.	देवेन्द्र सत्यार्थी	रथ के पहिए, कठपुतली, दुधगाद्द।
4.	रांगेय राघव	काका, कब तक पुकारूँ।
5.	उदयशंकर भट्ट	सागर, लहरें और मनुष्य।
6.	वीरेन्द्र नारायण	अमराई की छाँह।
7.	महन्त धनराजपुरी	अविरल आँसू।

1. डॉ. इन्दिरा जोशी, 'हिन्दी आँचलिक उपन्यास : उद्भव और विकास', देवनागर प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं. 1985, पृ. 59.

8. शैलेश मटियानी हौलदार।

9. डॉ.रामदरश मिश्र पानी के प्राचीर।

10. बलवन्त सिंह रात, चोर और चान्द।

11. राजेन्द्र अवस्थी जंगल का फूल।''[1]

इन गणपती चन्द्र गुप्मत जी की तालिका में से रांगेय राघव तक के कृतियों को हम प्रेमचंदकालीन उपन्यास कह सकते है। इसके साथ-साथ ''निराला जी के 'निरूपमा' (1936), 'चोटी की पकड' (1946) में भी आँचलिकता के तत्व है। वृन्दावनलाल वर्मा की कृती 'मृग-नयनी' में भी वह तत्व पाये जाते है। परंतु, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त के शब्दों में, आँचलिक संज्ञा का अविष्कार 'फणीश्वरनाथ रेणु' द्वारा उनके मैला-आँचल (1954) की भूमिका में हुआ, किंतु इस परम्परा का सूत्रपात इससे पूर्व ही नागार्जुन के उपन्यासों के द्वारा हो चुका था।''[2]

2.2.3 प्रेमचन्दोत्तर कालीन आँचलिक उपन्यास (1936 से 1951 तक) :-

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में आँचलिकता के साथ-साथ अनेकानेक शैलियों एवं रूपों का प्रयोग किया गया, जिसमें उपन्यास अपनी निजी एवं मौलिक विशिष्टताओं को लेकर चलने लगा। परिणामत: उपन्यासों को विषय के अनुसार विभाजीत किया गया। ऐतिहासिक उपन्यास, राजनीतिक उपन्यास, मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास, सामाजिक उपन्यास इस प्रकार के उपन्यास निर्माण जरूर हुये। परंतु इनमें भी आँचलिकता थी ही, इनमें भी विशिष्ट भूप्रदेश का जन-जीवन चित्रित किया जा रहा था। ''जैसे - इलाचन्द्र जोशी (मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास), 'सन्यासी' 1940, 'निर्वासित' 1944, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', 'शेखर एक जीवनी' 1940, 'विषाद-मठ' 1946, सेठ गोविंददास 'इन्दुमती' 1950, डॉ. देवराज 'अजय की डायरी' 1960, अमृतलाल नागर 'बूंद और समुद्र' 1956, मोहन राकेश - 'अंधेरे बन्द कमरे', 'अमृत और विष' अमृतलाल नागर 1996।''[3]

अत: हम यह कह सकते है कि, 1937 से 1960 तक के उपन्यासों में सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक विषयों को लेकर उपन्यास क्यों न लिखे हो उनमें आँचलिकता का

---

1. शम्भूसिंह, 'रांगेय राघव और आँचलिक उपन्यास', सुशील प्रकाशन, अजमेर, प्र.सं.1989, पृ. 23.
2. वही, पृ. 25.
3. डॉ. इन्दिरा जोशी, 'हिन्दी आँचलिक उपन्यास : उद्‌भव और विकास', देवनागर प्रकाशन, जयपुर, प्र. सं. 1985, पृ. 131-144.

स्वर प्रधान रहा है। जिनमें अनेकानेक प्रदेश के जनजीवन, स्थानीय रंग, लोक-संस्कृति उभरकर सामने आई है। जहाँ हिंदी उपन्यासों में विविधता का आगमन हुआ वहाँ आँचलिकता का अलंकार पहनाकर ही उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास प्रस्तुत किये दिखाई देते है। "डॉ. रामदरश मिश्र ने हिंदी के तेरह उपन्यासों को आँचलिक उपन्यास स्वीकृत किया है।"[1]

	लेखक का नाम	कृति का नाम
1.	नागार्जुन	रतिनाथ की चाची, बलचनमाँ, नयी पौध, दुःखमोचन, बाबा बटेसर नाथ, वरूण के बेटे।
2.	रेणु	मैला आँचल.
3.	उदयशंकर भट्ट	सागर, लहरें और मनुष्य।
4.	रांगेय राघव	कब तक पुकारूँ।
5.	देवेन्द्र सत्यार्थी	ब्रह्मपुत्र।
6.	शैलेश मटियानी	हौलदार।
7.	राजेन्द्र अवस्थी	जंगल के फूल।
8.	रामदरश मिश्र	पानी के प्राचीर।

शम्भूसिंह जी ने अपने लघुप्रबंध 'रांगेय राघव और आँचलिक उपन्यास' में विभिन्न विद्वानों द्वारा वर्णित आँचलिक निम्न उपन्यास को स्वीकार किया है -

	लेखक	कृती का नाम
1.	शिवप्रसाद 'रुद्र'	बहती गंगा।
2.	रेणु	मैला आँचल, परती परिकथा, जूलूस।
3.	उदयशंकर भट्ट	सागर, लहरे और मनुष्य, लोक परलोक, शेष अशेष।
4.	पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'	फागुन के चार दिन।
5.	नागार्जुन	बलचनमाँ, नयी पौध, बाबा बटेसरनाथ, वरूण के बेटे, दुःखमोचन, रतिनाथ की चाची, उग्रतारा।
6.	देवेन्द्र सत्यार्थी	रथ के पहिए, कठपुतली, दूध गाद, ब्रह्मपुत्र।
7.	डॉ. रांगेय राघव	कब तक पुकारूँ, काका, विषाद मठ।

---

1. शम्भूसिंह, 'रांगेय राघव और आँचलिक उपन्यास', सुशील प्रकाशन, अजमेर, प्र. सं. 1979, पृ. 30.

8.	वीरेन्द्र नारायण	अमराई की छाँह।
9.	महन्त धनराजपुरी	अविरल आँसू।
10.	शैलेश मटियानी	हौलदार, चिठ्ठीरसेन, चौथी मुठ्ठी।
11.	डॉ. रामदरश मिश्र	पानी के प्राचीर।
12.	बलवन्त सिंह	रात, चोर और चाँद।
13.	राजेन्द्र अवस्थी	जंगल के फूल, सूरज किसकी छाँह।
14.	कैलाश कात्यायन	लम्बे, ठिगने, बौने।
15.	श्यामू संन्यासी	उत्थान।
16.	प्रेमचन्द	गोदान।
17.	बलभद्र ठाकुर	नेपाल की वो बेटी, आदित्यनाथ, मुक्तावली।
18.	अमृतलाल नागर	बूँद और समुद्र, सेठ बाँकेमल।
19.	यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'	दीया जला हुआ, खम्भा अन्न दाता।
20.	लक्ष्मीनारायण लाल	बया का घोंसला और साँप।
21.	भैरवप्रसाद गुप्त	मशल, गंगा मैया, सती मैया का चौरा।
22.	दुर्गाशंकर मेहता	अनबुझी प्यास।
23.	मनहर चौहान	हिरना साँवरी।
24.	आनन्द प्रकाश जैन	आठवी भाँवर।
25.	शिवप्रसाद सिंह	अलग अलग वैतरणी।
26.	योगेन्द्रनाथ सिंह	वन के मन में।
27.	जयप्रकाश भारती	कोहरे में खोए चाँदी के पहाड।
28.	राही मासूम राजा	आधा गाँव।
29.	शानी	काला जल।
30.	शिवपूजन सहाय	देहाती दुनियाँ।
31.	राजेन्द्रसिंह बेदी	एक चादर मैली सी।
32.	समरेश बसु	गंगा।
33.	केशवप्रसाद मिश्र	कोहबर की शर्त।
34.	मन्नन द्विवेदी	रामलाल।

35.	जयवंत दलवी	घुन लगी बस्तियाँ।
36.	व्यंकटेश माडगुळकर	बनगरवाडी।
37.	यू. अनन्त मूर्ति	संस्कार।
38.	रघुबर दयाल सिंह	त्रियुगा।
39.	उपेन्द्रनाथ अश्क	पत्थर - अल पत्थर।
40.	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	सोया हुआ जल।
41.	विवेकी रॉय	बबूल।
42.	नागार्जुन	इमरतिया।
43.	ओमप्रकाश निर्मल	बहता पानी रमता जोगी।
44.	हिमांशु श्रीवास्तव	लोहे के पंख।
45.	श्रीलाल शुक्ल	रागदरबारी।
46.	वीरेन्द्र नारायण	अमराई की छाँह।
47.	डॉ. श्याम परमार	मोरझाल इत्यादि।"[1]

इंदिरा जोशी हिन्दी उपन्यास साहित्य को आँचलिक धारा में परिणत करने का श्रेय श्री. मन्नन द्विवेदी गजपुरी को देती है। श्री. मन्नन द्विवेदी गजपुरी की कृति 'रामलाल' (1914) को प्रथम आँचलिक उपन्यास मानती है।

क्यों न हिन्दी उपन्यासों में आँचलिकता का बीज-वपन आद्य उपन्यासों में दिखाई देता है। प्रेमचंदजी ने 'प्रेमा' (1904) यह पहला उपन्यास लिखते हुये साहित्य में प्रवेश किया (1904 से 1936) तक चलती लेखनी ने उन्हें उपन्यास सम्राट का ताज पहना दिया। प्रेमचंद के उपन्यासों में अखिल भारतीयत्व दिखाई देता है। भारतभूमी का चित्रण करनेवाले प्रेमचंद जी ने 'गोदान' के माध्यम से भारतीय ग्रामीण जीवन को समाज के सामने लाया, जिसमें पुरे भारत वर्ष के गाँव का चित्रण था। प्रेमचंद जी के समकालीन उपन्यासकारों के कृतियों में भी आँचलिकता के तत्व दिखाई देते है। वह उपन्यास है - 'गोदान' 1936, निराला - 'बिल्लेसुर बकरिहा' 1941, वृंदावनलाल वर्मा - 'झाँसी की रानी' 1946, 'कचनार' 1947, नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची' 1948।

---

1. शम्भूसिंह, 'रांगेय राघव और आंचलिक उपन्यास', सुशील प्रकाशन, अजमेर, प्र. सं.1979, पृ. 31-33.

इस तरह ये उपन्यास विशुद्ध आँचलिक उपन्यास नहीं है इनमें आंशिक रूप में आँचलिकता पाई जाती है। तथा ये आँचलिक तत्वों के नुसार न होने के कारण इनमें अधिक विवरणात्मकता दृष्टिगोचर होती है। इस तरह प्रेमचंदकालीन युग में मुख्य रूप से 'देहाति दुनिया', 'गोदान', 'रतिनाथ की चाची' आदि उपन्यासों के माध्यम से आँचलिक उपन्यासों की नींव डाली दिखाई देती है।

4. हिंदी उपन्यास में आँचलिकता का युग (1951 से 1967 तक) :-

तिलस्मी-ऐयारी और सामाजिक समस्याओं को लेकर लिखे जानेवाले उपन्यास की कथात्मकता को प्रेमचंद जी के आगमन से नई दृष्टि दी। प्रेमचंद जी के उपन्यासों में भारतभूमी का समग्र चित्रण उभरकर सामने आ गया। "प्रेमचंद के उपन्यासों का क्षेत्र, जीवन के समान ही विशद और व्यापक है। इनकी कथावस्तु, पात्रों के वैयक्तिक सुख-दुःख का निरूपण करती हुई विशाल राजनैतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि में विकास पाती है। इन चित्रणों में उन्होंने गाँव या कस्बों के जीवन का चित्र अनेक ब्यौरों में दिया है। सूक्ष्म पर्यवेक्षण पग-पग पर मिलता है। गाँवों के खेतिहरों और मजदूरों के जीवन को वे विशेष महत्व देते हैं क्योंकि इनकी दिनचर्या का उनको सर्वोत्तम परिचय प्राप्त था। पीडा के आगार भारतीय ग्राम, उनका ध्यान इसी कारण आकृष्ट करते हैं क्योंकि दलितों और पीड़ितों के प्रति उनमें सहज अनुभूति है। इन दिनों उन्हें प्रगतिशील या मार्क्सवादी कहा गया है किन्तु सच्चाई यही है कि समाज के प्रति अनुराग और निर्धनों के प्रति सहानुभूति, उनमें स्वाभाविक है और इसका उद्‌गम उनकी उदार भावना में है।"[1]

प्रेमचंदजी के उपन्यास में अधिकतर भारतीय समाज जीवन, कृषी जीवन और गाँव, क्षेत्र का वर्णन चित्रित हुआ, परंतु उसमें चित्रित वर्णन सम्पूर्ण भारतवासी जनता के भावनाओं, जीवन को अभिव्यक्त करता रहा जिसके कारण उपन्यासकार प्रेमचंद जी का उपन्यास 'गोदान' को मिल का पत्थर कहा जाता है। प्रेमचंद जी के साथ-साथ उनके समय के कई उपन्यासकारों के उपन्यासों में गांव का वर्णन आया है परंतु वह अंचल विशेष को लेकर प्रस्तुत नहीं होता है ; शुद्‌ध आँचलिक उपन्यास की शुरूआत 1951 में फणीश्वरनाथ रेणु लिखित 'मैला आँचल' से मानी जाती है; क्योंकि उपन्यास के नाम और कथ्य दोनों को लेकर आँचलिक शब्द का हिंदी आलोचना में समावेश हुआ। इस बारे में इंदिरा जोशी जी कहती है - "हिंदी के विशुद्‌ध

---

1. डॉ. रामअवध द्विवेदी, 'हिन्दी साहित्य के विकास की रुपरेखा', हिन्दी साहित्य (1920-1935) प्र. सं.1956, पृ. 175-176.

आँचलिक उपन्यासों की रचना, बीसवी शती के छठे और सातवें दशकों में तीव्र गति से हुई। इसका कारण भारत की स्वाधीनता और देश के विभिन्न जनपदों या अंचलों के जनसाधारण में प्रादेशिक अस्मिता का एक अभिनव जागरण था।''[1]

इसतरह आँचलिकता की प्रवृत्ती अंचल विशेष को लेकर समग्र रूप से प्रेमचन्दोत्तर युगीन हिन्दी साहित्य में पल्लवीत हुई। आधुनिक हिंदी आँचलिक उपन्यास का प्रथम प्रवर्तन प्राय: श्री नागार्जुन जी है, इस बारे में रामदरश मिश्र जी कहते है - ''अंचल के जटिल जीवन चित्र को अंकित करने के लिए लेखक कहीं मोटी रेखाएँ खींचता है, कहीं पतली, कहीं अवकाशों को भरने के लिए दो-चार बिन्दु अपनी तूलिका से झाड देता है। अनेक पर्वों, उत्सवों, परम्पराओं, विश्वासों, व्यथा के अवसरों, गीतों, संघर्षों, प्रकृति के रंगों, पुराने-नए जीवन मूल्यों आदि से लिपटा हुआ अंचल का जीवन अभिव्यक्ति के नए माध्यम की अपेक्षा करता है।''[2]

रामदरश मिश्र ने उल्लेखित की सारी बातों को लेकर नागार्जुन जी के उपन्यास प्रस्तुत होते है इसलिए रामदरश मिश्र जीने श्री. नागार्जुन के उपन्यासों को प्रथम आँचलिक उपन्यास के स्थान पर रखा है - ''नागार्जुन के सारे उपन्यास आँचलिक कहे जाते हैं, और उनमें कहीं वैसा बिखराव नहीं है जैसा कि 'मैला आँचल', 'बूँद और समुद्र', 'पानी के प्राचीर' आदि में है। कारण स्पष्ट है - नागार्जुन के उपन्यास में अंचलविशेष के पात्रों और घटनाओं को लेते हैं लेकिन अंचल की समग्रता अंकित करना उनका उद्देश्य नहीं होता। उनके उपन्यास विशेषतया पिछडे वर्ग में से किसी नायक को चुन लेते हैं और उसके जीवन की कथा भी सीधे आगे बढ़ाते हैं।''[3] यहाँ रामदरश मिश्र जी ने कहा है कि नागार्जुन के उपन्यास आँचलिक उपन्यास है, परंतु उसमें नायक की प्रमुखता दिखाई देती है।

डॉ. सुरेश सिन्हा जी ने अपनी कृती 'हिन्दी उपन्यास : उद्‌भव एवं विकास' में यही मत दिया है - ''यो तो आँचलिकता का प्रवेश उपन्यासों में बहुत पहले ही हो चुका था पर शुद्‌ध रूप से आँचलिक प्रवृत्तियों पर ही अपने उपन्यासों को आधारित करनेवाले नागार्जुन हिंदी के पहले आँचलिक उपन्यासकार है।''[4]

---

1. डॉ. इन्दिरा जोशी, 'हिन्दी आंचलिक उपन्यास : उद्‌भव और विकास', देवनागर प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं. 1985, पृ. 145.
2. रामदरश मिश्र, 'हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्‌वितीय सं., 2008, पृ. 236-237.
3. वही, पृ. 237.
4. डॉ. सुरेश सिन्हा, 'हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ - आंचलिक यथार्थ की अभिनव अभिव्यक्ति', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली. प्र. सं. 1970, पृ. 60-68.

उपर्युक्त परिभाषा में उद्धृत विशेषताओं को लेकर 'मैला आँचल' के बाद हिंदी साहित्य में निम्नलिखित आँचलिक उपन्यास लिखे गये - नागार्जुन कृत 'बलचनमा', शिवप्रसाद कृत 'बहती गंगा' (1952), देवेंद्र सत्यार्थी कृत 'रथ के पहिए' (1953), भैरव प्रसाद गुप्त कृत 'गंगा मैया' (1953), लक्ष्मीनारायण लाल कृत 'बया का घौसला और साँप' (1953), रांगेय राघव कृत 'काका' (1953), नागार्जुन कृत 'नई पौध' (1963) और 'बाबा बटेसरनाथ' (1954), बलभद्र कृत 'मुक्तावली' (1955), उग्रकृत 'फागुन के चार दिन' (1955), देवेंद्र सत्यार्थी कृत 'ब्रह्मपुत्र' (1956), अमृतलाल नागर कृत 'बूँद और समुद्र' (1956), योगेंद्र सिह्ना कृत 'वनलक्ष्मी' (1956), नागार्जुन कृत 'दु:खमोचन' (1956), आदि उपन्यासों में शुद्ध आँचलिकता की विशेषताएँ पाई जाती है।

इसके साथ-साथ रेणूकृत 'परती परिकथा' (1957), नागार्जुनकृत 'वरूण के बेटे' (1957), हिमांशु श्रीवास्तव कृत 'लोहे के पंख' (1957), अश्क कृत 'पत्थर अल पत्थर' (1957), रांगेय राघवकृत 'कब तक पुकारूँ' (1958), बलभद्र ठाकूर कृत 'आदिनाथ' (1958), उदयशंकर कृत 'लोक परलोक', (1958) आदि में आंशकि रूप में आँचलिक विशेषता दृष्टिगोचर होती है।

छटे दशक में अन्य उपन्यास उल्लेखनीय है जिसमें आँचलिक विशेषताएँ दिखाई देती है - देवेंद्र सत्यार्थी कृत 'दूधगाछ' (1958), रांगेय राघव कृत 'राई और पर्वत' (1958), राजेंद्र अवस्थी कृत 'सूरज किरण की छाँव' (1956), भैरवप्रसाद गुप्त कृत 'सती मैया का चौरा' (1959), बलभद्र ठाकूर कृत 'नेपाल की ओ बेटी' (1956), शैलेश मटियानी कृत 'कबूतरखाना' (1959), तथा 'बोरीवली से बोरीबंदर तक' (1959), उग्रकृत 'फागुन के चार दिन' (1959), गोविंद वल्लभ पंत कृत 'मैत्रेय' (1959) आदि उपन्यासों में स्थान विशेषता को महत्व देकर आँचलिकता को स्पष्ट किया है।

हिंदी उपन्यास साहित्य के सातवे दशक में निम्नलिखित उपन्यासों में आँचलिक विशेषता स्पष्ट होती है - राजेंद्र अवस्थी कृत 'जंगल के फूल' (1960), शैलेश मटियानी कृत 'हौलदार' (1960), उदयशंकर भट्ट कृत 'शेष, अवशेष' (1960), रामदरश मिश्र कृत 'पानी के प्राचीर' (1961), हिमांशु श्रीवास्तव कृत 'नदी फिर बह चली' (1961), शैलेश मटियानी कृत 'चिठ्ठी रसैन' (1961), जयसिंह कृत 'कलावे' (1961), मनहर चौहनकृत 'हिरना

साँवरी' (1962), शैलेश मटियानी कृत 'एक मूठ सरसों' (1963), श्याम परमार कृत 'मोरसाल' (1963), हिमांशु जोशी कृत 'कालाजल' (1965), केशवप्रसाद मिश्रकृत 'कोहबर की शर्म' (1965), राही मासूम राजा कृत 'आधा गाँव' (1966) आदि उपन्यास आँचलिक उपन्यास के अंतर्गत आते है जिन्हें डॉ. इंदिरा जोशी और शम्भूसिंह जी ने आँचलिक उपन्यास के रूप में स्विकारा है।

उपर्युक्त उपन्यासों में अंचल विशेषता को देखकर हम उन्हें आँचलिक उपन्यास कह सकते हैं, परंतु उनमें भी प्रदेश की विशिष्टता को देखकर हम उनके निम्न भेद भी कह सकते है। जैसे - ग्रामांचल, पहाडी अंचल, सागरांचल, नदी अंचल, विशिष्ट जन-जाति अंचल का चित्रण, नागरी अंचल आदि। आंचलिक उपन्यासकारों ने विशिष्ट भूप्रदेश के अंचल विशेषतर लोकजीवन, संस्कृति का चित्रण करते हुये भारतीय समाज के सामने अनछूये, अछूत प्रदेश के जनजीवन को एक पृष्ठभूमी प्रदान की है जिसे पढ़कर पाठक उस प्रदेश की विशेषता की ओर आकृष्ट हो जाता है और उस प्रदेश का ही एक पात्र बनकर उस प्रदेश अंचल में घूमता हुआ वहाँ के जीवन के सुख-दु:ख को झेलता उपन्यास की सफर करता आ जाता है। आंचलिक उपन्यासकारों का उद्देश्य ही यह रहा है कि भारत के अछूते प्रदेश को समाज के सामने लाकर पाठक को सोचने के लिए बाध्य करना।

आधुनिक आँचलिक उपन्यास (1067 से 2000 तक) :-

रेणू जी के बाद लिखे गये उपन्यासों को हम आधुनिक आँचलिक उपन्यास के अंतर्गत रखते है तो निम्नलिखित उपन्यासों को आँचलिक उपन्यास कह सकते है जिनमें परिवर्तनशीलता दृष्टिगोचर होती है जिसका वर्णन रामदरश मिश्र इस प्रकार करते है - ''आज का यथार्थवादी कथाकार जब गाँव के जीवन को देखता है तो गाँव का यही चित्र उसके सामने होता है। 'राग-दरबारी' के कथाकार को अपने ढंग से ही गाँव दिखाई पड़ा और 'अलग-अलग वैतरणी' के कथाकार शिवप्रसाद सिंह के सामने भी यहीं गाँव था। लेकिन दोनों में फर्क है - 'रागदरबारी' के गांव में सब कोई मानसिक द्वंद्व शेष नहीं है, वह पक्के घडे की तरह हरामीपन में पक गया है किन्तु 'अलग अलग वैतरणी' का गाँव अभी अधपका है अर्थात अभी उनमें जड़ता और चेतना, होने और न होने, विवेक और अविवेक, नंगे यथार्थ और स्वप्न का द्वंद्व बाकी है।''[1]

1. रामदरश मिश्र, 'हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्तली, पटना, द्वि. सं. 2008, पृ. 254.

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि आठवे दशक के उपन्यासों में बदलते मानवीय मूल्य, सामाजिक, आर्थिक, राजकीय जीवन का चित्रण होने लगा जिससे 'अंचल' भी छूट नहीं पाया और उपन्यासकारों ने भी बदलते मानवीय जीवन के यथार्थता को लेकर अंचल विशेष की बदलती पृष्ठभूमी का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। जैसे - श्रीलाल शुक्ल 'रागदरबारी' (1968), आनंद प्रकाश जैन 'आठवी भंवर' (1968), जयप्रकाश भारती कृत 'कोहरे में खोए चांदी के पहाड' (1968), जगदीश चंद्र पाण्डेय कृत 'गंगा के तट पर' (1968), रामदरश मिश्र का 'जल टूटता हुआ' (1969), यादवेंद्र शर्मा कृत 'ढोलन कुंजकली' (1970), मणि मधुकर का 'सफेद मेमने' (1971), सत्यप्रयास पाण्डेय कृत 'चंद्रवदनी' (1971), रामदरश मिश्र कृत 'सुखता हुआ तालाब' (1972), जगदीश चंद्र कृत 'धरती धन न अपना' (1972), 'कभी न छोडे खेत' (1972), अभिमन्यू कृत 'एक बीघा प्यार', शिवानी कृत 'चौदह फेरे' (1972), नरेंद्र वर्मा कृत 'सुबह की तलाश' (1972), यादवेंद्र कृत 'हजार घोडों का सवार' (1973), हिमांशु जोशी कृत 'अलय' (1973), भगवती प्रसाद शुक्ल कृत 'खारे जल का गांव' (1973), अजित पुष्प कृत 'कंधे से टँगी बगावत' (1973), इलाचंद्र जोशी कृत 'ऋतुचक्र' (1973), शिवप्रसाद सिंह कृत 'गली आगे मोडती है' (1974), विवेक राय कृत 'पुराण पुरुष' (1975), हिमांशु जोशी कृत 'कगार की आग' (1976), जगदीशचंद्र माथुर कृत 'मुठ्ठी भर कंकर' (1976), गोविंद मिश्र कृत 'लाल पिली जमीन', विवेक राय कृत 'लोकऋण' (1977), वल्लभ जेकाक कृत 'अंतर्कथा' (1977), कमलाकांत त्रिपाठी कृत 'बेदखल' (1977), फणीश्वरनाथ रेणू 'पल्टू बाबू रोड' (1978), कृष्णा सोबती कृत 'जिंदगीनामा' (1979), मणि मधुकर कृत 'पत्तों की बिरादरी' (1979), विवेक राय कृत 'श्वेतपत्र' (1979), रामदरश मिश्र कृत 'आकाश की छत' (1979) आदि उपन्यासों को आधुनिक आँचलिक उपन्यासों के अंतर्गत रख सकते है जो बदलते मानवीय जीवन के यथार्थता को लेकर अंचल विशेषता के साथ प्रस्तुत होता रहा।

नब्बे दशक के उपन्यासों में रामदरश मिश्र जी ने निम्नलिखित उपन्यासों को आँचलिक उपन्यास के रूप में महत्वपूर्ण माना है - 'कगार की आग' (1978), 'बुरांश फूलते तो हैं', 'महासागर', 'समय साक्षी', 'सुराज', 'विकल्प' (1986), 'ग्राम देवता', 'मन-दर्पन', 'संकल्पा', 'अगला कदम', 'डूब' (1991), 'सबसे बडा सिपइया', 'पार' आदि उपन्यासों को

आँचलिक उपन्यास के रूप में स्विकार किया गया है जिसमें ग्रामीण और शहरी दोनों प्रदेशों का चित्रण प्रस्तुत होता है, परंतु उसकी विशेषता यह है कि औद्योगिकरण और भूमंलीकर के कारण जो बाजारवाद का आगमन हुआ जिसके परिणामस्वरूप, गांव हो या शहर का आदमी अपने अस्तित्व के लिये किस प्रकार छटपटा रहा है और अपने अंचल में आते परिवर्तन को साथ लेकर जीने की कोशिश कर रहा है, इसका चित्रण आज के आँचलिक उपन्यासों की विशेषता कह सकते है।

निष्कर्ष :-

इस तरह हिंदी साहित्य के इतिहास में आँचलिक उपन्यास की शुरूआत नागार्जुन के उपन्यासों से मानी जाती है, परंतु रेणू के 'मैला आँचल' से उसका नामकरण और अंचल विशेषता को ध्यान में रखकर 'मैला आँचल' से आँचलिक उपन्यास का आगमन हिंदी साहित्य में हुआ। आज भी बडी मात्रा में आँचलिक उपन्यास लिखे जा रहे है; जिसके माध्यम से भारत भूमि के अनेक अछूते और अपरिचित भू-भागों का परिचय भारतवासियों को करा देना उसके साथ-साथ विभिन्न प्रदेश का लोकजीवन, लोकसंस्कृती परिचित कराते हुए खण्ड-खण्ड में विभाजित भारतीय जनता के सुखदु:ख को प्रस्तुत करते हुए अपनत्व की भावना निर्माण करना और देश के संस्कृति को उजागर करना यही उद्‌देश्य आँचलिक उपन्यासकारों का रहा है, यह बात स्पष्ट हो जाती है।

----- -----